योग दर्शन में अष्टांग-योग

भारतीय दर्शन में 'योग' का बहुत महत्व है। तत्व साक्षात्कार हो या आत्म-साक्षात्कार दोनों के लिए योग साधना की आवश्यकता होती है। योग शब्द का प्रचलित अर्थ मिलन है अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। परंतु योग दर्शन में 'योग' से तात्पर्य दुःख संयोग का वियोग बताया गया है अर्थात् "दुःखों से आत्यंतिक निवृत्ति योग है"।

'योग' शब्द युज् धातु से बना है जिसका अर्थ है - समाधि। महर्षि पतंजलि ने योग को 'चित्तवृत्ति निरोध' (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) बताया है। चित्त वृत्तियों का निरोध समाधि में होता है, अतः योग को समाधि भी कहा गया है। (योगः समाधिः) चित्त का अर्थ है - अन्तःकरण, इसलिए योग में बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों को मिलाकर 'चित्त' नाम दिया गया है। चित्त प्रकृति का प्रथम प्रसूत तत्व है तथा इसमें सत्व गुण का प्राधान्य है। यह अचेतन होते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म है और पुरुष के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करता है। अतः कैवल्य (मोक्ष) प्राप्ति हेतु चित्त की वृत्तियों का निरोध आवश्यक है। और इसके लिए अष्टांग-नियम साधन के रूप में बताये गये हैं। इस प्रकार से योग शरीर, इन्द्रिय और चित्त की शुद्धि के लिए आठ अंगों का वर्णन करता है जो निम्नवत् हैं -

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

" यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि "।

(योगसूत्र - २/२९)

ये आठ योग के अंग हैं। इनमें से प्रथम पाँच (5) योग के बहिरंग साधन कहे जाते हैं क्योंकि ये अप्रत्यक्ष रूप से योग के लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होते हैं। अंतिम के तीन अंग अर्थात्

धारणा, ध्यान और समाधि, अंतरंग साधन कहे जाते हैं, क्योंकि ये लक्ष्य की प्राप्ति में सीधे सहायक होते हैं। अब हम इनकी विस्तृत व्याख्या करेंगे। —

(1). यम (Absention) :→ यम का अर्थ है - 'नियंत्रण' अथवा 'संयम'। यह नियंत्रण मन, वचन तथा शरीर पर होना चाहिए। आंतरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए सबसे पहले बाह्य जीवन को सात्विक और दिव्य बनाना जरूरी है, जो कि केवल यमों के द्वारा ही संभव है। भारतीय नीतिशास्त्र एवं धर्मशास्त्रों में यमों का महत्व सर्वोपरि है। यम पाँच प्रकार के हैं —

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमः"। (योगसूत्र - 2/30)

(a) - अहिंसा - मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को कष्ट न देना।

(b) - सत्य - मिथ्यावचन का त्याग।

(c) - अस्तेय - चोरी नहीं करना।

(d) - ब्रह्मचर्य - इंद्रियों और वासनाओं पर नियंत्रण रखना।

(e) अपरिग्रह - अनावश्यक और दूसरों की वस्तुओं का संग्रह करना और न लेना अपरिग्रह है।

(2). नियम (Observances) :→ नियम के अंतर्गत यह बताया गया है कि 'हमें क्या करना चाहिए'। नियम के अंतर्गत पाँच (5) प्रकार के अनुशासन होते हैं —

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः। (योगसूत्र - 2/32)

(a). शौच - शौच का अर्थ है - शुद्धि अथवा सफाई। यह शुद्धि शरीर तथा मन दोनों की होनी चाहिए। मृत्तिका, निवासस्थान, जल तथा नियमित आहार आदि के द्वारा शरीर को शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिए तथा साथ ही अपने विचारों द्वारा मन को भी स्वच्छ रखना चाहिए। यही शौच है।

(b). संतोष → संतोष से तात्पर्य है - सभी प्रकार की तृष्णा का त्याग कर उचित प्रयत्न के पश्चात् जो भी फल मिले उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना है। संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।

(c). तप → उचित रीति और अभ्यास से शरीर तथा मन को सभी प्रकार के द्वन्दों ; यथा - सर्दी-गर्मी ; हर्ष-विषाद, आदि को सहन करने योग्य बनाना तप है। तप से अशुद्धि दूर होती है।

(d). स्वाध्याय → वेद, उपनिषद आदि धर्म-ग्रन्थों का नियमपूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है। इससे इष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।

(e). ईश्वरप्रणिधान → इसका अर्थ है - ईश्वर में ध्यान लगाना तथा स्वयं को पूर्णतः उस पर आश्रित कर देना। इससे समाधि की सिद्धि होती है। ("समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्"।) - योगसूत्र, 2/45.

(3) आसन (Postures) :→ "स्थिरसुखमासनम्" अर्थात् सुखपूर्वक स्थिर होकर बैठना (विशेष मुद्रा में बैठना) ही आसन है। आसन की मुद्रा में उचित आसन शरीर एवं मन की चंचलता को कुछ क्षण के लिए आराम एवं तनावहीन अवस्था में लाना होता है। इन आसनों से शरीर विकारों एवं व्याधियों से बच सकता है। ये कुछ आसन हैं - पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, शीर्षासन, मयूरासन, भुजंगासन, तड़ासन आदि। ये हठयोग के आसन हैं।

(4). प्राणायाम (Breath Control) :→ "श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायमः"। अर्थात् श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को रोकना ही प्राणायाम है। श्वास का अर्थ है - बाहर की वायु को नासिका द्वारा अन्दर प्रवेश कराना तथा प्रश्वास का अर्थ है - कोष्ठ स्थित वायु को नासिका द्वारा बाहर निकालना। वस्तुतः प्राणायाम द्वारा हम श्वास-प्रश्वास की गति पर नियंत्रण करना सीखते हैं। प्राणायाम क्रिया के तीन (3) भेद हैं -

(i). पूरक → श्वास को भीतर खींचकर रोकना पूरक है।
(ii). रेचक → भीतर की वायु को बाहर निकालकर बाहर ही रोक देना।
(iii). कुम्भक → इसमें बिना पूरक और रेचक किये, श्वास-प्रश्वास की गति को रोक दिया जाता है।

इस प्रकार से प्राणायाम के कई लाभ होते हैं, जैसे इससे हृदय और आंतरिक अंगों को शक्ति मिलती है, चंचल मन नियंत्रण में आता है एवं शरीर में स्फूर्ति आदि है, आदि। सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इससे विवेक ज्ञान जाग्रत होता है।

(5). प्रत्याहार (Sense Control) :→ यह इन्द्रियों का संयम है। इन्द्रियाँ स्वभाव से ही विषयोन्मुख होती हैं। बाह्य विषयों की ओर प्रवृत्त होना उनका स्वभाव है। उनकी बहिर्मुखवृत्ति को अन्तर्मुख बनाना, उन्हें बाह्य विषयों से हटाकर भीतर मन के वश में रखना, प्रत्याहार कहलाता है।

(6). धारणा (Fixing of the mind on a Particular Subject) :→ किसी देश में जैसे - नासाग्र में, भ्रूमध्य में, हृत्कमल में, या किसी बाह्य वस्तु में जैसे इष्टदेवता की मूर्ति आदि में चित्त को लगाना धारणा है। ("देशबन्धश्चित्तस्यधारणा")

(7). ध्यान (Meditation) :→ "तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्"।
अर्थात ध्येय वस्तु के ज्ञान की एकतानता या नाम ध्यान है। ध्येय वस्तु विषयक चित्तवृत्तियाँ जब निरन्तर एकाकार रूप से प्रवाहित हों तब उसे ध्यान कहते हैं। ध्यान में ध्याता, ध्येय और ध्यान की अलग-अलग प्रतीति होती है। इस प्रकार से ध्यान से आत्म अविद्या के प्रभाव से मुक्त होती है। उस पर पदार्थ का वास्तविक रूप प्रकट होता है उसे मुक्ति का आभास होता है।

(8). समाधि (Concentration) :→ समाधि से तात्पर्य है - मन को एकाग्र करना। अर्थात् जिसमें मन विषयों से हटाकर एकाग्र किया जाता है, वह समाधि है। समाधि में ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिपुटी में ध्येय ही शेष रह जाता है तथा ध्याता और ध्यान ध्येयाकार हो जाते हैं। इस तरह यह एक प्रकार की आत्म विस्मृति की अवस्था है जहाँ समस्त चित्तवृत्तियाँ रुक जाती हैं और चित्त आत्मा में लीन हो जाता है। तथा उसे तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है। यह परम शांति की अवस्था है। समाधि से व्यक्ति अनेकानेक प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त करता है, जैसे -

(1). अणिमा - अणु के समान छोटा बन जाना।
(2). लघिमा - हल्का बनकर ऊपर उठ सकना।
(3). महिमा - पहाड़ के समान भारी बन सकना।
(4). प्राप्ति - कहीं से भी कोई भी वस्तु प्राप्त कर सकना।
(5). प्राकाम्य - इच्छा की सिद्धि होना।
(6). वशित्व - सब प्राणियों को अपने वश में कर सकना।
(7). ईशित्व - समस्त भौतिक पदार्थ पर अधिकार जमा सकना।
(8). यथाकामावसायिता - संकल्पों की सिद्धि हो सकना।

समाधि के भेद :→ योग दर्शन में समाधि के मुख्य दो भेद बताये गये हैं - सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि।

(1) सम्प्रज्ञात समाधि :- इसमें ध्येय वस्तु का ज्ञान बना रहता है। ध्याता तथा ध्यान दोनों ध्येयाकार हो जाते हैं; इनकी ध्येय से पृथक अनुभूति नहीं होती। इसे सबीज समाधि कहते हैं। सम्प्रज्ञात समाधि चार (4) प्रकार की होती है -

(a). सवितर्क → इसमें ध्यान का आलंबन अर्थात् ध्येय स्थूल पदार्थ; जैसे, मूर्ति आदि।

(ii) सविचार - इसमें ध्यान का आलंबन सूक्ष्म पदार्थ ; जैसे तन्मात्र होते हैं।

(iii) सानन्द - इसमें इन्द्रिय आदि सूक्ष्म पदार्थों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इससे आनन्द की प्राप्ति होती है।

(iv) सास्मित - इसमें अहंकार पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। अहंकार आस्मिता (मैंपन) है, इसलिए इसे सास्मित कहते हैं।

(ii) असम्प्रज्ञात समाधि :→ इसमें चित्त सर्वथा निरुद्ध हो जाता है। ध्यान का आलम्बन अर्थात् ध्येय पूर्णतः लुप्त हो जाता है। इसके अनन्तर ही व्यक्ति की प्रज्ञा पूर्णतः जाग्रत होती है और वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। असंप्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं। असम्प्रज्ञात समाधि भी दो प्रकार की होती है—

(i) भवप्रत्यय एवं (ii) उपायप्रत्यय।

(i) भवप्रत्यय → वृत्तिनिरोध होने पर यदि चित्त अविद्या में लीन हो जाय तो यह अज्ञानावस्था, जड़समाधि, प्रकृति-लय या भवप्रत्यय कहलाती है।

(ii) उपायप्रत्यय → यही वास्तविक समाधि है। शुद्ध ज्ञान या प्रज्ञा को 'उपाय' कहते हैं। प्रज्ञा के उदय होने पर अविद्या नाश से वृत्तियों एवं संस्कारों का सर्वथा निरोध हो जाता है एवं द्रष्टा की अपने स्वरूप अर्थात् नित्य विशुद्ध चैतन्य में प्रतिष्ठा हो जाती है। यही उपायप्रत्यय समाधि कहलाती है।

इस प्रकार से चित्तवृत्तिनिरोध एवं स्वरूपावस्थान कैवल्य या मोक्ष है। यही योग का चरम लक्ष्य है।

—×—